जीव अधिकार। ३०वाँ कलश है। ३० है न? ३० कलश। सेठी! कहाँ है? पृष्ठ ४३ है न, ३०वाँ कलश। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने कहे हुए इस नियमसार का मोक्षमार्ग अधिकार है। धर्म का अधिकार क्या है और मोक्ष किस प्रकार होता है, उसकी व्याख्या है। ३०वाँ कलश है।

अपि च सकलरागद्वेषमोहात्मको यः,
परमगुरुपदाब्जद्वन्द्वसेवाप्रसादात्।
सहजसमयसारं निर्विकल्पं हि बुद्ध्वा,
स भवति परमश्रीकामिनीकान्तकान्तः।।३०।।

इसका अर्थ दूसरी ओर ४४ पृष्ठ पर है। क्या कहते हैं? देखो! थोड़ा सूक्ष्म अध्यात्म विषय है। अनन्त काल में कभी सुना नहीं और कभी किया नहीं। कहते हैं कि **सकल मोहरागद्वेषवाला जो कोई पुरुष,...** यह आत्मा है, वह अनादि से पर्याय-अवस्था में मिथ्यात्व और राग-द्वेषस्वरूप पर्याय में है। वस्तु जो आत्मा है, वह तो शुद्ध आनन्दकन्द है परन्तु उसकी दशा में अनादि से मोह अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेषवाला है। पर्याय में-वर्तमान हालत-दशा में। ऐसा पुरुष भी, ऐसा कहते हैं।

कोई पुरुष, परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से,... सन्त-मुनि, वीतरागी—जिन्हें वीतरागभाव आत्मा का अनुभव हुआ हो। आत्मा तो पुण्य-पाप के क्रियाकाण्ड के राग से भिन्न है। ऐसा जिन्हें अन्तर में भान (हुआ हो) और निर्ग्रन्थ सन्त मुनि हुए हों। कहते हैं कि जीव को उनका उपदेश मिलता है। पहले तो उपदेश /

देशनालब्धि (मिलती है)। कैसी? **परमगुरु के चरणकमल युगल की सेवा के प्रसाद से,...** सेवा का अर्थ, इसने जो सुना, उसका विनय करके, कि यह महाराज सन्त आत्मा के धर्म की बात करते हैं। पण्डितजी! क्या (कहा)?

निर्विकल्प सहज समयसार को जानता है,... ऐसा उन्होंने कहा। गुरु ने ऐसा कहा - भगवान! तेरा स्वरूप जो अन्दर है, वह पर्याय / अवस्था में मोह-राग-द्वेष होने पर भी, तेरी चीज में वे नहीं हैं। अवस्था में / पर्याय में मोह-राग-द्वेष होने पर भी **निर्विकल्प सहज समयसार...** शुद्ध आनन्दकन्द भगवान आत्मा, जिसमें पुण्य और पाप, शुभ-अशुभराग के विकल्प से रहित ऐसी निर्विकल्प चैतन्यसत्ता, वीतरागस्वभावभावस्वरूप आत्मा है, वह निर्विकल्प है। सहज, अनादि सहज है। वह किसी से बना हुआ है, ऐसा नहीं है। अनादि से है। **सहज समयसार...** समयसार अर्थात् आत्मा। शुभ-अशुभपरिणाम से भिन्न निर्विकल्प आत्मा सहज समयसार-आत्मा को जानता है, उसे धर्म होता है। समझ में आया? पण्डितजी! है?

पर्याय में / अवस्था में / हालत में सकल मोह-राग-द्वेष होने पर भी। पर्याय में तो अनादि से है परन्तु जब धर्मात्मा, ज्ञानी उसे मिलते हैं, तब उससे कहते हैं कि तेरा आत्मा सहजानन्दस्वरूप, पूर्णानन्द के स्वभाव से भरपूर, ऐसा निर्विकल्प अभेद, समयसार अर्थात् द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरहित है। द्रव्यकर्म जड़ आठ; नोकर्म शरीर; भावकर्म पुण्य-पाप का विकल्प राग, इनसे भिन्न तेरी चीज़ है। उसे जान। बसन्तीलालजी! गजब बात भाई यह तो! सीधा धर्म ऐसा?

वीतराग सर्वज्ञदेव परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा ने जो फरमाया, वही कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यहाँ कहा और वही बात यहाँ पद्मप्रभमलधारिदेव इस टीका के कलश बनाकर कहते हैं। जंगलवासी दिगम्बर मुनि थे। कुन्दकुन्दाचार्य तो दो हजार वर्ष पहले संवत् ४९ में यहाँ हुए। कुन्दकुन्दाचार्य (सीमन्धर) भगवान के पास गये थे। वर्तमान में सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजमान हैं। (वहाँ) गये थे और आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया और इसके टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव जंगलवासी दिगम्बर सन्त मुनि आत्मध्यान में मस्त (हैं)।

वे कहते हैं कि अनादि का कोई भी प्राणी, मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष की दशा

तो उसमें है। निगोद से लेकर उसमें है। समझ में आया? ऐसा होने पर भी गुरु के ज्ञान का उसे उपदेश मिला। कैसा उपदेश? सर्वज्ञपंथ में सत् का क्या उपदेश है? सन्तों का क्या उपदेश है? ज्ञानियों का क्या उपदेश है? कि निर्विकल्प सहज समयसार को जान। यह उपदेश है। ऐसा उपदेश था, ऐसा जाना। अहो! मैं शरीर से तो भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न, एक समय की अवस्था से भी मेरी चीज़ तो अभेद भिन्न है। आहा..! सूक्ष्म बात है। सम्यग्दर्शन क्या है, यह कभी इसने जाना ही नहीं। उसके बिना अनन्त बार (भटका है)। समझ में आया?

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' यह छहढाला में आता है। छहढाला में आता है? दौलतराम। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' पंच महाव्रत लिये, नग्नपना धारण किया। ऐसी क्रिया अनन्त बार की और नौवें ग्रैवेयक में चला गया परन्तु आत्मज्ञान—आत्मा क्या चीज़ है, उसके स्वभाव का स्पर्श किये बिना इसके जन्म-मरण मिटे नहीं। स्पर्श अर्थात् अनुभव। आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा, गुरु ने ऐसा, ऐसा जाना। गुरु ने ऐसा कहा था। भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर निर्विकल्प अर्थात् भेदरहित अभेदवस्तु है और स्वाभाविक समयसार शुद्ध भगवान आत्मा तेरा स्वरूप है। तेरी दृष्टि वहाँ लगा, तो तुझे सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होगा; नहीं तो धर्म की शुरुआत होगी नहीं। समझ में आया? है? इसमें है न पण्डितजी! आहा..हा..!

गुरु की सेवा के प्रसाद का अर्थ यह कि उन्होंने यह कहा था। समझ में आया? इस वीतरागमार्ग का स्वाभावभाव गुरु ने कहा। भगवान! तेरी चीज़ तो अन्दर अभेद निर्विकल्प अखण्ड आनन्द, ज्ञान आदि गुण का रसकन्द पिण्ड आत्मा है। ऐसे समयसार का ज्ञान कर। अन्तर्मुख होकर उसका अनुभव कर। अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर तो तेरा कल्याण होगा। समझ में आया? है इसमें? आहा..हा..! दुनिया को परम सत्य क्या है, यह समझ में आया नहीं। सुनने में आया नहीं कि वह चीज़ क्या है?

अखण्डानन्द प्रभु, पूर्ण शान्तरस पूर्ण ज्ञान और आनन्दरस, ऐसा एकरूप सदृश सामान्य ध्रुवस्वभाव पड़ा है, उसे जान, ऐसा कहते हैं। शास्त्र को जानना या दूसरे को जानना, पुण्य-पाप को जानना या एकसमय की पर्याय को जानना, यह बात नहीं की है।

आहा..हा..! बापू! यह बात तूने भगवान! अनन्त काल में कभी सुनी नहीं। यह बात तूने सुनी नहीं। ऐसे क्रियाकाण्ड ऐसे करना... ऐसे करना... यह व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो सब विकल्प का भाव राग है। तेरी चीज़ तो राग से भिन्न है। आहा..हा..! ऐसा परम सहज समयसार जानता है। जानता है अर्थात् उसका अनुभव करता है। समझ में आया?

अनादि से पर्याय में-हालत / दशा में मिथ्यात्व और राग-द्वेष का जो अनुभव करता था, उसे छोड़कर, जिसने अखण्डानन्दमूर्ति भगवान आत्मा का अनुभव किया, उस ओर की दृष्टि करके अभेद का अनुभव हुआ तो उसने आत्मा को जाना, ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया? ऐसी चीज़ कभी भी इसने यथार्थरूप से सुनी नहीं। बाहर का यह क्रियाकाण्ड, ऐसा करो और वैसा करो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो, यात्रा करो... यह सब है। वह शुभराग है, शुभपुण्य राग है; वह धर्म नहीं। आहा..हा..! बहुत कठिन काम!

वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में इन्द्रों और सन्तों के बीच ऐसा फरमाते थे। भाई! प्रभु! आचार्य अमृतचन्द्राचार्य भगवानरूप से ही बुलाते हैं। तेरी चीज़ अन्दर निर्लेप, कर्म और राग के लेपरहित की तेरी चीज़ अन्दर है। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसा राग का लेप, वह तो भावबन्ध है, वह तो आस्रवतत्त्व है और कर्म का बन्धन, वह तो अजीवतत्त्व है। तेरी चीज़ में वह अजीव का बन्ध और राग के बन्धरहित की तेरी चीज़ है। आहा..हा..! यह तो कहा न, राग-द्वेष-मोह तो पर्याय में है। भावबन्ध है। पर्यायदृष्टि में वह तो अनादि से ऐसा सेवन किया है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष का अनुभव किया, वह तो अधर्म है। उससे तो नरक और निगोद में अनन्त बार गया।

तेरा भगवान आत्मा अन्दर है, उसका अनुभव कर। जानता है अर्थात् अनुभव करता है, वह पुरुष अनुभव करता है, वह मोक्ष का मार्ग, वह धर्म है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा हुआ मार्ग है। आहा..हा..! है न? सामने पाँच श्लोक है। देखो! अन्दर है। **समयसार को जानता है,...** ऐसा लिखा है। दूसरे को जानता है, अमुक को जानता है, व्यवहार को जानता है, निमित्त को जानता है (-ऐसा नहीं कहा)। आहा..हा..! पहले करने की चीज़ तो यह है। यह कभी किया नहीं, इसलिए इसके जन्म-मरण कभी मिटे नहीं। आहा..हा..!

है (यह) तो सिद्ध किया। राग-द्वेष-मोह तो है और कर्म भी है। वस्तु है। है तो उसमें क्या हुआ? मेरी सत्ता में वह है नहीं। पूर्णानन्द प्रभु स्वाभाविक वीतराग समयसार। सम-सार ऐसा आत्मा राग, कर्म, नोकर्म से रहित है, ऐसे आत्मा का तू अनुभव कर, यह मोक्षमार्ग है, यह धर्म है। यह वीतराग का धर्म है। समझ में आया?

वह पुरुष, परमश्रीरूपी सुन्दरी का प्रियकान्त होता है। मोक्ष होगा। ऐसे आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आत्मा का अनुभव करेगा तो वह मुक्तिसुन्दरी का प्रिय होगा अर्थात् उसे मुक्ति मिलेगी। इसके अतिरिक्त किसी क्रियाकाण्ड से मुक्ति-बुक्ति नहीं मिलती। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रियाकाण्ड से नहीं मिले, ऐसा कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें क्या कहा? इतनी बात है। यही है। दूसरा मोह-राग पहले कहा था कि मोह-राग-द्वेष है, उनसे तो संसार है।

मुमुक्षु : अनेकान्त.....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त है। आत्मा से होता है और उनसे नहीं होता, यह अनेकान्त है। समझ में आया? यह तो पहले कहा न, मोह-राग-द्वेष है, व्यवहार आदि, विकल्प आदि है तो है, उसमें क्या? आहा..हा..! कठिन है। अन्तर भगवान चिद्घन अतीन्द्रिय आनन्द रसकन्द प्रभु नित्यानन्दस्वरूप आत्मा है। उस नित्यानन्द का अनुभव करने से आनन्द का स्वाद आता है, उसे धर्म कहते हैं। वीतरागमार्ग में तो यह है। अन्य में तो यह कुछ है ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? लो, यह एक श्लोक हुआ। दूसरा श्लोक, ३१, ऊपर।

श्लोक-३१

(अनुष्टुप्)

भावकर्मनिरोधेन द्रव्यकर्मनिरोधनम्।
द्रव्यकर्मनिरोधेन सन्सारस्य निरोधनम्।।३१।।

(दोहा)

भावकर्म निरोध से द्रव्यकर्म निरोध।
द्रव्यकर्म निरोध से ही संसार निरोध॥३१॥

***श्लोकार्थ :*—भावकर्म के निरोध से, द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है॥३१॥**

श्लोक-३१ पर प्रवचन

भावकर्मनिरोधेन द्रव्यकर्मनिरोधनम्।
द्रव्यकर्मनिरोधेन सन्सारस्य निरोधनम्।।३१।।

...बोल संवर में आता है। वह यहाँ सब प्रकार से लिया।

श्लोकार्थ :- भावकर्म के निरोध से,... यहाँ क्या कहते हैं ? कि शुभ और अशुभ जो विकल्प उठता है, वह भावकर्म है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का, यात्रा का शुभराग और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग-वासना, पाप राग है। इन दोनों राग को यहाँ भावकर्म कहा गया है। **भावकर्मनिरोधेन** भावकर्म को रोकने से। भाषा तो उपदेश के वाक्य हैं। भावकर्म की उत्पत्ति नहीं होने से। **द्रव्यकर्म का निरोध होता है; द्रव्यकर्म के निरोध से, संसार का निरोध होता है।** आहा..हा..! क्या कहते हैं ?

भगवान आत्मा परम आनन्दस्वरूप, ध्रुव, नित्यानन्द को स्पर्श करने से, उसके अनुभव से भावकर्म रुक जाते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प की उत्पत्ति नहीं होती और इसके

कारण नये द्रव्यकर्म भी नहीं आते। आत्मा में शान्ति, स्वच्छता, स्वभाव में-अन्तर में शक्ति में-सत्त्व में, तत्त्व के सत्त्व में ज्ञान और आनन्द जो भरे हुए हैं, उनका अनुभव करने से उसे धर्म होता है, उसकी मुक्ति होती है।

मुमुक्षु : व्यवहारमोक्षमार्ग कहाँ जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार-फ्यवहार मोक्षमार्ग है ही नहीं। मोक्षमार्ग एक ही है-निश्चय। समझ में आया? अभी तो आगे कहेंगे अन्त में, सिद्ध और संसार आत्मा में है ही नहीं। वह तो पर्याय में है। आत्मा तो आत्मा है। आत्मा में संसार और व्यवहार कहाँ है? छठे श्लोक में कहेंगे। समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ मार्ग अलौकिक है, भाई! आहा..हा..! लोगों को सुनने को नहीं मिलता, इसलिए मान लेते हैं कि यह क्या? यह क्या? यह क्या नहीं, यह है। पण्डितजी! आहा..हा..! परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का यह सन्देश है। कुन्दकुन्दाचार्य यह सन्देश लेकर आये। आठ दिन भगवान के पास गये थे। संवत् ४९ (में) गये थे। दिगम्बर सन्त यह समाचार—सन्देश लाए कि भगवान तो ऐसा कहते हैं, भाई!

त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा कहते हैं कि भावकर्म की उत्पत्ति न हो, उसका अर्थ कि तेरे आनन्दस्वभाव की उत्पत्ति हो, शुद्धोपयोग की उत्पत्ति हो, स्वभाव के आश्रय से शुद्धभाव की उत्पत्ति हो तो अशुद्धभाव की उत्पत्ति न हो। अशुद्ध की उत्पत्ति न हो तो इसे कर्म नहीं आते, कर्म रुक जाते हैं। अतः इसे भावधर्म हुआ और उससे भावमुक्ति होती है। समझ में आया? ऐसा कठिन काम, भाई!

मुमुक्षु : भावधर्म किसे कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न? भावकर्मरहित, वह भावधर्म। पुण्य-पाप का विकल्प वह भावकर्म अर्थात् अधर्म है। उसे रोकने का अर्थ स्वभावसन्मुख होना। स्वभावसन्मुख होकर जो निर्मल श्रद्धा-ज्ञान-शान्ति की उत्पत्ति हो, उसका नाम भावधर्म है। उस भावधर्म से भावकर्म की उत्पत्ति नहीं होती और कर्म का आना रुक जाता है और मुक्ति होती है। आहा..हा..!

एक-एक कलश में बहुत भरा है। पद्मप्रभमलधारिदेव जंगलवासी दिगम्बर सन्त-मुनि थे। आत्मध्यान में, अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त! थोड़ा विकल्प आया और शास्त्र बन गया, टीका बन गयी। समझ में आया?

श्लोक-३२

(वसंततिलका)

सज्ज्ञानभावपरिमुक्तविमुग्धजीवः,
कुर्वन् शुभाशुभमनेकविधं स कर्म।
निर्मुक्ति-मार्ग-मणु-मप्यभिवाञ्छितुं नो,
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके।।३२।।

(वीरछन्द)

करे शुभाशुभ कर्म मूढ़ जो वह है सम्यग्ज्ञान विहीन।
लेश न जाने वाञ्छा शिवपथ की वह जग में शरण विहीन॥३२॥

***श्लोकार्थ :*—जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ, मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता, उसे लोक में (कोई) शरण नहीं है॥३२॥**

श्लोक-२४ पर प्रवचन

३२ वाँ।

सज्ज्ञानभावपरिमुक्तविमुग्धजीवः,
कुर्वन् शुभाशुभमनेकविधं स कर्म।
निर्मुक्ति-मार्ग-मणु-मप्यभिवाञ्छितुं नो,
जानाति तस्य शरणं न समस्ति लोके।।३२।।

श्लोकार्थ : —**जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित...** देखो ! क्या कहते हैं ? यहाँ जीव से शुरु किया। जो भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसके ज्ञान से रहित है, उसका ज्ञान नहीं है। **सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,...** क्या कहते हैं ? देखो ! आहा..हा.. ! जिसे भगवान आत्मा ज्ञानानन्द और आनन्दस्वरूप है, उसका जिसे अनुभव नहीं, ज्ञान नहीं, ऐसे ज्ञान से रहित जीव अनादि से शुभाशुभ अनेक कर्म करता है। शुभाशुभपरिणाम को करता है, जो विकार है। समझ में आया ? **सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है, वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को करता हुआ,...** पुण्य और पाप के विकल्पों के भाव करता हुआ, शुभ उपयोग और अशुभ उपयोग, वह सम्यग्ज्ञानरहित पुरुष उसे करता है, ऐसा कहते हैं। धर्मी, सम्यग्दृष्टि जीव, शुभाशुभपरिणाम को नहीं करता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! गजब बातें, भाई ! चैतन्यस्वरूप भगवान, चैतन्य का नूर, ऐसा प्रकाश का पूर, उसका जिसे ज्ञान नहीं, अनुभव नहीं, वह मिथ्यादृष्टि तो पुण्य-पाप के भाव करता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

जो जीव, सम्यग्ज्ञानभावरहित विमुग्ध (मोही, भ्रान्त) है,... यह भ्रान्ति मिथ्यादृष्टि, शुभाशुभ परिणाम तो करता है। आहा..हा.. ! क्योंकि वस्तु शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का तो भान नहीं है और अज्ञान भूमिका में वस्तु के स्वरूप का अज्ञान है तो अज्ञान भूमिका में अज्ञानभावरूप पुण्य-पापभाव का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! कहो, समझ में आया ? तुम्हारी भाषा में, समझ में आता है ? समझाये छे कांई ? - हमारी गुजराती भाषा है। आहा..हा.. !

भगवान तीर्थंकरदेव, पीछे नाम भी आया न ? मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, पश्चात् मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्दाचार्य आये। वे कुन्दकुन्दाचार्य फरमाते हैं, उसका अर्थ पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। आहा..हा.. !

यहाँ तो क्या कहते हैं ? कि जिसे आत्मा आनन्द और परिपूर्ण ध्रुवस्वरूप है, उसका ज्ञान नहीं, वे तो भ्रान्ति में पड़े हैं। क्योंकि मैं राग हूँ, मैं एक समय की पर्याय हूँ, ऐसी भ्रान्ति में पड़े हैं तो भ्रान्तिवाला क्या करेगा ? शुभ और अशुभपरिणाम करेगा। उसे शुद्धता का तो भान नहीं है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में खाते-खाते होगा ? यह तो कल आया था या नहीं ? जहर खाते-खाते अमृत की डकार आयेगी ? अमृत की डकार नहीं आयेगी ? जहर-जहर पीता है। ऐई ! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी ? इसी प्रकार राग करते-करते धर्म होगा ? यह तो वीतरागधर्म है। राग करते-करते तो अज्ञानभाव होगा, ऐसा कहते हैं। देखो, अज्ञानभाव में राग का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

सम्यग्ज्ञानभावरहित है, वह शुभाशुभ का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। धर्मी जीव है, उसे तो शुद्ध आत्मा का भान है, अत: शुभ-अशुभपरिणाम का कर्ता ज्ञानी नहीं होता। होते हैं, उन्हें जाननेवाला रहता है। गजब काम ! प्रकाशदासजी ! देखो ! कलश देखो ! कैसा भरा है कलश में ! कलश में अमृत भरा है। कलश में पानी भरा होता है न ? इसी प्रकार यह कलश कहते हैं। मुनि, सन्त, जंगल में आनन्द में रहनेवाले दिगम्बर धर्म का ऐसा स्वरूप प्रसिद्ध करते हैं कि धर्म यह है। ऐसी बात वीतराग परमेश्वर के अतिरिक्त, दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं है ही नहीं। ऐसा कोई कह नहीं सकता। समझ में आया ? आहा..हा.. ! उसमें है न ? उसमें देखो न !

जो जीव,... एक बात। जीव तो द्रव्य हुआ। **सम्यग्ज्ञानभावरहित....** अर्थात् कि अपने द्रव्यस्वभाव का भान नहीं, तो वह सम्यग्ज्ञानरहित मिथ्यादृष्टि है। देखो ! यहाँ सम्यग्ज्ञान -भावरहित कहा और उसे मिथ्यात्वी कहा। **वह जीव शुभाशुभ अनेकविध कर्म को...** शुभभाव और अशुभभाव असंख्य प्रकार के हैं, तो शुभ-अशुभभाव को कर्ता है। राग से भिन्न आत्मा क्या चीज़ है, इसकी तो उसे खबर नहीं। क्रियाकाण्ड में जो शुभभाव है, वह तो आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व को करता है। क्योंकि आस्रव से रहित भगवान आत्मा भिन्न है, उसका तो भान नहीं, अत: भानरहित प्राणी पुण्य-पाप के भाव को करता है। समझ में आया ?

मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... है ? शुभाशुभभाव को करनेवाला सम्यग्ज्ञानरहित जीव, **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,....** मोक्षमार्ग, जो पवित्र आनन्दस्वरूप आत्मा, निर्विकल्प आनन्दघन आत्मा, उस ओर का शुद्ध उपयोग, वह मोक्ष का मार्ग है तो शुद्ध उपयोग की वांछा। **लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,....** ऐसा कहते हैं, देखो !

मुमुक्षु : अर्थात् शुद्ध उपयोग हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ कि उससे वांछा नहीं करता। वह वहाँ ही किया करता है। यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... इससे शुद्ध उपयोग होगा? शुभाशुभभाव करते-करते शुद्ध होगा? ऐसा कहते हैं। देखो! ऐसे करते हुए, ऐसा है न? करता है न? राग... राग... राग... राग... शुभराग.. शुभराग.. शुभगरा।

करता हुआ, मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... यहाँ कहाँ होगा? ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी नहीं वांछता, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ कि शुभाशुभभाव करता है तो शुद्धस्वभाव पर दृष्टि नहीं तो निर्मल उपयोग जो शुद्ध हो, उसे वह वांछता नहीं। वांछता है पुण्यकर्म ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... सेठी!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं चलता क्यों? सेठ सामने बैठायेगा। चलेगा वह तो। वह तो अस्ति में है, नास्ति में नहीं। जयपुर में आगे बैठेगा। कहो समझ में आया? जयपुर जाना है न? जयपुर। वहाँ शिक्षण शिविर चलेगा, बीस दिन चलेगा। ज्येष्ठ कृष्ण ५, तुम्हारी जयपुर बीस दिन का है। बाहर से बहुत लोग आयेंगे। बीस दिन का शिक्षण शिविर है। भोजन मुफ्त बीस दिन। वहाँ जयपुर में। हम वहाँ जानेवाले हैं। समझ में आया? यह जयपुर का सेठ है। आहा..हा..! जयपुर तो यह भगवान आत्मा जय का पुर है। जिसमें राग-द्वेष को जीतकर, आत्मा की वीतरागता प्रगट करे, वह जयपुर तो भगवान आत्मा है। सेठी! तुम्हारे गाँव में यह होता है। बाकी तो हारपुर है। पुण्य और पाप करनेवाले हारपुर हैं। अपने राज्य की वह हानि करता है। आहा..हा..! समझ में आया? क्या कहते हैं?

लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,... शुभभाव करते-करते कुछ तो होगा या नहीं? तो कहते हैं, उसे शुद्ध की लेशमात्र वांछा नहीं है। आहा..हा..! शुभभाव करते-करते अन्दर कुछ होगा या नहीं? अंश है या नहीं? बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : थोड़ा शुद्ध का अंश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। आहा..हा..! देखो!

मुमुक्षु : वीतरागभाव की व्याख्या क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागभाव अर्थात् राग की अनुत्पत्ति होना और स्वभाव के आश्रय से निर्दोषदशा उत्पन्न होना, वह वीतरागभाव है, वह धर्म है। पहले विकल्पसहित निर्णय तो करे कि ऐसी चीज़ है और उस निर्णय में अभी यथार्थ आनन्द आया नहीं। यथार्थ निर्णय तो अनुभव करे, तब यथार्थ निर्णय होता है, तब आनन्द साथ में आता है, तो यथार्थ निर्णय कहने में आता है। समझ में आया? आहा..हा..!

अनेकविध शुभाशुभ करता है। **मोक्षमार्ग को लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता,...** वांछना नहीं जानता, ऐसा कहते हैं। जानता भी नहीं कि मोक्षमार्ग की वांछा किस प्रकार हो? यह तो पुण्य.. पुण्य.. पुण्य.. पुण्य.. दया, दान, व्रत, भक्ति.. भक्ति... करते.. करते.. करते.. होगा। उसे मोक्षमार्ग की वांछा का जानपना भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! भारी, जगत के प्रवाह में यह बात ऐसी टकराये। समझ में आया? **लेशमात्र भी वांछना नहीं जानता, उसे लोक में (कोई) शरण नहीं है।** देखो, शुभाशुभपरिणाम अज्ञानी करता है, उसे कोई शरण नहीं। शरण तो शुभाशुभभाव से रहित अपना आनन्दस्वरूप भगवान का स्पर्श तो किया नहीं, अनुभव किया नहीं। महासत्ता का, चैतन्य महाप्रभु का, आनन्दसहित निर्णय तो किया नहीं, उसे कोई शरण नहीं है। समझ में आया? यह ३२वाँ कलश हुआ। ३३, ऊपर कलश है।

श्लोक-३३

यः कर्म-शर्म-निकरं परिहृत्य सर्वं,
निःकर्मशर्मनिकरामृतवारिपूरे।
मज्जन्त-मत्यधिकचिन्मय-मेकरूपं,
स्वं भाव-मद्वय-ममुं समुपैति भव्यः ।।३३।।

(वीरछन्द)

कर्मज सुख त्यागे निष्कर्म सुखामृत सर में लीन रहे।
भव्य पुरुष वह अद्वितीय चैतन्य एक निज भाव लहे ॥३३॥

श्लोकार्थ :—**जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह को परिहरण करता है, वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए, ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय, एकरूप, अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है॥३३॥**

श्लोक-३३ पर प्रवचन

यः कर्म-शर्म-निकरं परिहृत्य सर्वं,
निःकर्मशर्मनिकरामृतवारिपूरे।
मज्जन्त-मत्यधिकचिन्मय-मेकरूपं,
स्वं भाव-मद्वय-ममुं समुपैति भव्यः ।।३३।।

जो समस्त कर्मजनित सुखसमूह को परिहरण करता है,... कर्ता परिहर है। क्या कहते हैं ? आत्मा में जो पुण्य-पापभाव उत्पन्न होता है, उसमें जो कर्मजनित सुख मानता है। ऐसा कहते हैं कि जो शुभाशुभभाव में ठीकपना मानता है, उनमें सुख मानता है, **सुखसमूह को परिहरण करता है,...** यह नहीं। शुभ-अशुभभाव में सुख नहीं है। समझ में आया ? सुख तो मेरी चीज़ आत्मा आनन्द में सुख है। आहा..हा.. ! कभी दिशा देखी नहीं। कैसे जाना और कहाँ से निकलना, वह कभी भी सुना नहीं। ऐसे का ऐसे अनादि के अन्ध का अन्ध चला आता है। आहा..हा.. !

कहते हैं कि **समस्त कर्मजनित सुखसमूह को...** सुखसमूह अर्थात् यह कल्पना की थी कि इस पुण्य में ठीक है, शुभभाव में मुझे शान्ति मिलती है। समझ में आया ? यह पैसे में सुख है, धूल में सुख है - ऐसा माननेवाला तो महामूढ़ है। समझ में आया ? ये करोड़पति हैं, वे सुखी हैं-मूढ़ हैं। धूल में कहाँ सुख आया ?

मुमुक्षु : उद्योगपति तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उद्योगपति है न ? वह तो पाप का उद्योगपति है। सेठी ! उद्योगपति सुखी है-मूढ़ है। वह तो राग है और राग तो दुःख है। आहा..हा.. ! पैसे में, स्त्री में, परिवार में, अनुकूलता में हम सुखी हैं। कहाँ से सुख आया ? पर में सुख कहाँ था (कि) वह सुखी है। ऐई ! दो-पाँच-पच्चीस लाख मिले, करोड़-दो करोड़ मिले तो सुखी हैं-मूढ़ हैं। तुझे

कौन सुखी कहता है ? तुझे मूर्ख सुखी कहते हैं ? तू माने मूर्ख। यहाँ वीतरागमार्ग में तो ऐसी बात है। समझ में आया ?

कहते हैं, देखो! **कर्मजनित सुखसमूह...** ऐसे कुटुम्ब, परिवार, पैसा, इज्जत, रूपवान सुन्दर शरीर... धूल में भी नहीं है। वे तो पर हैं। समझे न ? कर्मसमूह लिया न सब ? शरीर सुन्दर, वाणी मीठी, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, मान, मकान और दो-पाँच-पच्चीस लाख की आमदनी, सुखी है। धूल में भी सुख नहीं, मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। पर में सुख मानता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि (है), जैन नहीं। कहो, समझ में आया ? ऐसा है ? बसन्तीलालजी ? तुम पैसेवालों को सुखी कहते हो।

मुमुक्षु - पैसे के कारण से आकुलता होगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता करता है, इसलिए होती है। पैसे पर लक्ष्य जाए, वह आकुलता है। वहाँ धूल में कहाँ सुख है।

कर्मजनित सुखसमूह... आहा..हा..! यह शुभविकल्प उठता है, इसमें भी ठीक है - ऐसा मानता है, वह मूढ़ जीव है। (उसे) **परिहरण करता है, वह भव्य पुरुष,...** लो! विकल्प को छोड़कर, शुभविकल्प में भी सुख नहीं है; सुख तो मेरी चीज़ में अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा में है। मैं अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा हूँ; नित्यानन्द प्रभु मेरा अतीन्द्रिय -आनन्द-सुख मुझमें है। इन पुण्य-पाप के भाव में तो नहीं; तो बाहर में तो है ही नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही यहाँ कहते हैं। **वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** अभी तो इसके विशेषण आयेंगे। आहा..हा..! ऐसा कहते हैं कि शुभ-अशुभराग में जो मीठास-रुचि है, उसे उठा ले - ऐसा कहते हैं। कुछ भी शुभराग में अन्दर मीठास लगे, वह मिथ्यात्वभाव है। उसमें से दृष्टि उठाकर **वह भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** देखो! वहाँ भी कर्मजनित सुखसमूह था। यहाँ भी **निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** भगवान आत्मा में राग और विकल्परहित आनन्द पड़ा है। सुखसमूह आनन्द का समुद्र है। आहा..हा..!

जैसे समुद्र जल से लबालब भरा हुआ है; वैसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा हुआ है। कहाँ होगा, खबर नहीं। जैसे समुद्र में पानी लबालब भरा हुआ है;

वैसे भगवान आत्मा देह से भिन्न, राग से भिन्न, पुण्य से भिन्न; अन्तर स्वभाव से अभिन्न, अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा हुआ है। ऐसे **अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए,...** चैतन्यमय स्वरूप कैसा है ? यह तो अनादि की बात चलती है। यह तो **अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए, ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय,...** ऐसा भगवान आत्मा। कहते हैं कि चैतन्यमयस्वरूप अन्तर अमृतस्वरूप, ऐसे आनन्द में अनादि से मग्न ही है। समझ में आया ? अरे ! ऐसा कभी सुना नहीं।

क्या कहते हैं ? **भव्य पुरुष, निष्कर्म सुखसमूहरूपी...** कर्मरहित आनन्द आत्मा में है। राग के कार्यरहित अन्तर में आनन्द है। ऐसे **सुखसमूहरूपी अमृत के सरोवर में...** अमृत के सरोवर में भगवान अन्दर विराजमान आत्मा है। आहा..हा.. ! यह आत्मा अतीन्द्रिय **अमृत के सरोवर में मग्न होते हुए, ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय,...** जिसकी महाविशेष चैतन्यदशा, जिसका ज्ञायकभाव, परिपूर्ण भगवान अनादि-अनन्त ऐसा आत्मा **एकरूप,...** देखो ! **अद्वितीय निजभाव को प्राप्त होता है।** ऐसा निजभाव जो द्रव्यस्वभाव, उसे प्राप्त होता है, वह पर्याय है। फिर से। मार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोग बाहर में मानकर बैठे हैं। मार्ग निकला दूसरा।

कहते हैं, भगवान ! तेरा आत्मा निष्कर्म सुख आनन्द-समूह अमृत सरोवर में आत्मा अन्दर मग्न है। ध्रुव आनन्द। **ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय,...** वस्तु अभेद एकरूप अद्वितीय-उसके साथ दूसरे किसी की साम्यता नहीं - ऐसा निज भाव आत्मा। त्रिकाली निजभाव आत्मा, उसे प्राप्त होता है। निजस्वभावभाव आत्मा, उसे जो प्राप्त होता है, वह मुक्ति का मार्ग है।

मुमुक्षु : इसमें छोड़ने का क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ने-फोड़ने का कुछ नहीं। अन्दर में एकाकार होना (है)। यह तो पहले छोड़ने की बात की। भाई ! तेरा मार्ग तो दूसरा है, भाई ! क्या हो ?

कहते हैं कि विकल्पमात्र है, वह दुःखरूप है। अज्ञानी उसे सुख का समूह मानता है। उसे छोड़कर। इसका अर्थ (कि) उसका लक्ष्य छोड़कर। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप अपने आनन्द में मग्न है। आत्मा अनन्त आनन्दस्वरूप अमृत सरोवर में अतिशय चैतन्यमय आत्मा, उसमें अनादि से लीन है। ऐसे आत्मा को जो दृष्टि में प्राप्त करता है, स्वसन्मुख

होकर जो अनुभव में प्राप्त करता है, उसे मुक्ति का कारण प्राप्त हुआ। अभी तो भाषा समझना कठिन। धर्म तो कहीं रहा। आहा..हा..! देखो न! आचार्य क्या कहते हैं? साधारण लोगों को तो यह ऐसा लगता है। अभी तक माना हो, उसमें से यह दूसरी चोट पड़े कि यह नहीं, यह नहीं।

मुमुक्षु : यह तो शूरवीर बना दे - ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीर, वीर। वीर के रास्ते चढ़े, वह वीर। वह वीरता। बाहर में रोम खड़े हो जाएँ। आहा..हा..! ऐसा आता है न उसमें? रोमांच, अनुभव में? सविकल्प अनुभव करे, तब रोमांच... ऐसा आता है न? रोमांच खड़ा होता है। आहा..हा..!

ऐसे इस अतिशय-चैतन्यमय, एकरूप, अद्वितीय निजभाव... ऐसे त्रिकाली ज्ञायकभाव को पाता है। उसे छोड़ता है और इसे पाता है, ऐसा कहते हैं। रागादि को छोड़ता है, वह स्वभाव को प्राप्त करता है। कहो, पण्डितजी! ऐसा मार्ग है। सब छूट गया। अपना निजस्वरूप भगवान अमृत में मग्न सरोवर - ऐसा चैतन्य। आनन्द और चैतन्य दो भाग लिये। ऐसे आत्मा को अर्थात् ऐसे निजस्वभाव को; परभाव को छोड़कर निज स्वभाव को प्राप्त करता है, वह धर्मी है। कहो, समझ में आया? अभी तो ख्याल भी नहीं कि मार्ग क्या है और धर्म हो गया! धर्म... धर्म। बापू! धर्म का (फल) बहुत ऊँचा है, जिसका फल मुक्ति है। समझ में आया? पाँचवाँ श्लोक। ३४वाँ।

श्लोक-३४

(मालिनी)

असति सति विभावे तस्य चिन्तास्ति नो नः,
सतत-मनुभवामः शुद्ध-मात्मान-मेकम्।
हृदय-कमलसन्स्थं सर्व-कर्म-प्रमुक्तं,
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात्।।३४।।

(वीरछन्द)

सकल विभाव असत् होने से उनकी चिन्ता हमें नहीं।
हम तो हृदय कमल में स्थित एक शुद्ध आतम का ही॥
'सर्व कर्म से मुक्त सदा हूँ' सतत अनुभवन हैं करते।
क्योंकि मुक्ति का मार्ग नहीं है अन्य किसी भी कारण से॥३४॥

***श्लोकार्थ :*—(हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है; हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं, क्योंकि अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है॥३४॥**

श्लोक-३४ पर प्रवचन

असति सति विभावे तस्य चिन्तास्ति नो नः,
सतत-मनुभवामः शुद्ध-मात्मान-मेकम्।
हृदय-कमलसन्स्थं सर्व-कर्म-प्रमुक्तं,
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात्॥३४॥

***श्लोकार्थः*—**आहा..हा..! **(हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से,...** देखो! क्या कहते हैं? मुनि स्वयं की बात करते हैं और जगत को उपदेश देते हैं। स्वयं की पर्याय में विकार असत् है। हमारे स्वभाव में वह विकार है ही नहीं। आहा..हा..! पुण्य और पाप के विकल्प, **विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;...** हमारे में नहीं है, उसे छोड़ने की हमें चिन्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! पुण्य और पाप का भाव / विभाव असत् है; त्रिकाली सत् में नहीं है। द्रव्यस्वभाव सत् है तो विभावस्वभाव असत् है। स्वभाव की अपेक्षा से वह वस्तु (विभाव) असत् है, ऐसा कहते हैं।

(हमारे आत्मस्वभाव में) विभाव असत् होने से,... आत्मस्वभावी है न? भगवान आत्मा का तो निर्दोष वीतरागीस्वभाव है। अविकारी निर्दोष स्वभाव की अपेक्षा से विकार तो असत् है। जैसे अपने द्रव्य की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य अद्रव्य है, अवस्तु है; वैसे अपने

स्वभाव की अपेक्षा से राग / विभाव असत् है। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! ऐसा धर्म होगा? भाई!

विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है;... क्योंकि हमारे में नहीं है; उसे हमें छोड़ना क्या और रखना क्या? - ऐसा कहते हैं। हम तो शुद्ध आनन्दघन हैं। उसके स्वभाव में-अपना निजस्वभाव, त्रिकाली आनन्द आदि स्वभाव में विभाव का अभाव है। समझ में आया? देखो न! कैसा कलश रखा है! जंगल में मुनि थे, जंगल में, हों! पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त जंगल में बसते थे। पहले तो मुनि जंगल में ही रहते थे न! आत्मध्यानी ज्ञानी मुनि उन्हें कहते हैं। अन्तर में तो हजारों बार छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान हजारों बार आता था। आनन्द में-आनन्द में मस्त। उपदेश का विकल्प उठता था, वह भी दु:खरूप लगता था। आहा..हा..! पंच महाव्रत का विकल्प आता था, वह भी दु:खरूप लगता था। आहा..हा..! क्योंकि हमारे में नहीं है, ऐसा कहते हैं। ओहो..हो..!

विभाव असत् होने से, उसकी हमें चिन्ता नहीं है; हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त,... अन्तर में भगवान द्रव्यस्वभाव हृदयकमल में अन्दर भिन्न विराजमान है। **हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त,...** मैं तो हूँ। समझने के लिए ऐसा कहा। **सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** आहा..हा..! हम तो कर्म से विमुक्त, (यह) नास्ति और **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,...** (यह अस्ति)। शुद्ध ध्रुव चैतन्य भगवान अभेद को-एक को ही निरन्तर अनुभव करते हैं। लो, इसका नाम मोक्षमार्ग है। आहा..हा..! कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसा है। अरे! ऐसा मार्ग होगा! व्यवहार-फ्यवहार कुछ है ही नहीं? हो, (परन्तु वह) दु:खरूप है। यह क्या कहते हैं? असत् है। उसके घर में है, स्वभाव में नहीं।

हम तो हृदयकमल में स्थित सर्व कर्म से विमुक्त, शुद्ध आत्मा का एक का... देखो! शुद्ध आत्मा का - एक का। एकरूप स्वरूप है, उसे ही **सतत अनुभवन करते हैं,...** यह पर्याय हुई। **शुद्ध आत्मा का एक का...** यह द्रव्यस्वभाव हुआ। **सतत अनुभवन करते हैं,...** यह पर्याय हुई। करने का यह कार्य है। **क्योंकि अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है।** आता है न, अपने वहाँ? **'न खलु यस्मात अन्यथा साध्यसिद्धि'** (समयसार) १७-१८ गाथा में। वह सब... **शुद्ध आत्मा का एक का सतत अनुभवन करते हैं,**

क्योंकि अन्य किसी प्रकार से... भाषा देखो! अन्य किसी प्रकार से। कि भाई! शुभभाव से ऐसा हो, थोड़ा ऐसा हो, अमुक हो... **किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है, नहीं है।** है या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : 'न खलु न खलु'

पूज्य गुरुदेवश्री : 'न खलु न खलु' नहीं है, नहीं है। शुभभाव से धर्म नहीं, मुक्ति नहीं। अपने द्रव्यस्वभाव के आश्रय से शुद्धोपयोग उत्पन्न होता है, वही एक मुक्ति का उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। कहो, आहा..हा..! समझ में आया?

शुद्ध आत्मा का एक का सतत... देखो, भाषा! पर्याय कही, अशुद्ध है, परन्तु वह हमारे में कहाँ है? हमारे में तो है ही नहीं। लो, तो फिर तुम कौन हो? हम तो शुद्धात्मा हैं। और आगे छह श्लोक में तो बहुत ले जाएँगे। सिद्ध और संसार दो में से एक भी हमारे में नहीं है। हम तो एक ही ध्रुव हैं। समझ में आया? **अन्य किसी प्रकार से मुक्ति नहीं है,...** यह छठवें श्लोक में कहेंगे। समय हो गया। (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)